



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2018; 4(5): 25-27

© 2018 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 12-07-2018

Accepted: 14-08-2018

अर्चना कुमारी

शोध छात्रा, ललित नारायण
मिथिला, विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार,
भारत

भारतीय वाङ्मय में संस्कृत भाषा की महत्ता

अर्चना कुमारी

प्रस्तावना

भारतीय वाङ्मय में संस्कृत भाषा की महत्ता विभिन्न रूपों और क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है। संसार में बहुत-सी भाषाएँ हैं, किन्तु संस्कृत को ही देवभाषा तथा भाषा-जननी कही गयी है। दुनियाँ की सारी बातें इसी भाषा में कही गयी थी जिसका रूपान्तरण (अनुवाद) विभिन्न भाषाओं में करते आ रहे हैं। यह भाषा सभी बातों की धरोहर भाषा है।

किसी जाति या देश के काव्य-शास्त्र की प्रगति का भाषा से घना सम्बन्ध होता है। जिस जाति के पास समृद्ध एवं शक्तिशाली भाषा का माध्यम है वही कला तथा चिन्तन के क्षेत्रों में विस्तृत उपलब्धियाँ कर सकती है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि काव्य-शास्त्र की प्रगति के लिए भाषा ही पर्याप्त साधन है। वस्तुतः अन्तिम विश्लेषण में भाषा स्वयं जाति-विशेष की ही सृष्टि होती है और उसके चरित्र को प्रतिफलित करती है। भाषा आकाश से देश-विदेश की धरती पर नहीं बरस पड़ती। किन्तु व्यक्ति की दृष्टि से वह एक सहज प्राप्त वस्तु ही होती है। भाषा हमारी परम्परा का अंग है वह स्वयं महत्वपूर्ण परम्परा है और परम्परा के संक्रमण का सबसे महत्वपूर्ण एवं शक्तिसम्पन्न माध्यम। छापने की कला ने इस माध्यम को और भी महत्वपूर्ण बना दिया है। आज हम कल्पना भी नहीं कर सकते कि मनुष्य जाति भाषा के बिना अपनी सभ्यता और संस्कृति को कायम रख सकती है।

भाषा गढ़ी भी जाती है। वह प्रत्येक लेखक या विचारक जो दुनियाँ को नये विचार देता है, नयी भाषा का निर्माण करता है। श्रेष्ठ लेखक उतना नये शब्दों को नहीं गढ़ता जितना कि पुराने शब्दों के नये संगठनों को। इस प्रकार के संगठन काव्य साहित्य की जान है। ये संगठन पद-पद पर नये चित्रों, अलंकारों तथा भावनाओं का विधान करते हैं। वे काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने का भी एक प्रधान साधन हैं। एक दूसरे अर्थ में भी लेखक तथा विचारक नयी भाषा का निर्माण करते हैं। शास्त्रों की प्रगति के साथ नये पारिभाषिक शब्दों की आवश्यकता होती है, जिनकी मदद से अभिव्यक्ति में संक्षेप, कसावट एवं एतावत्व ;स्तंबजदमेद्ध आता है। इस प्रकार एक प्रगतिशील जाति लगातार नये शब्दों तथा व्यंजनाओं का आविष्कार करती चलती है। आधुनिक काल में भाषा-विकास के अन्य कारण भी उपस्थित हो गये हैं। विविध भाषाओं का सम्मिलन होने पर वे एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में पहुँचने लगते हैं और उनके अर्थ प्रकाशन के तरीके एक दूसरे को प्रभावित करने लगते हैं। इन दोनों ही रूपों में हिन्दी भाषा उर्दू, फारसी, अंग्रेजी आदि से प्रभावित हुई है। स्वयं अंग्रेजी भाषा के हजारों शब्द लैटिन, फ्रेंच, आदि भाषाओं से ग्रहण किये हैं और उनके मुहावरों से भी प्रभाव लिए हैं। संस्कृत भाषा अपने लम्बे इतिहास में महत्वशालिनी रही है। जिस आर्य जाति ने उसे प्रारम्भ में गठित किया, वह बड़ी ही प्रतिभा सम्पन्न जाति रही होगी। इसकी उत्पत्ति एवं समृद्धि में विशेष रूप से महत्वपूर्ण कारण आर्य जाति का निरीक्षणशील स्वभाव और उसकी विलक्षण सर्जनशील प्रतिभा थी। संस्कृत भाषा में सैकड़ों धातुएँ, तरह-तरह की क्रियाएँ और भाँति-भाँति के प्रत्यय पाये जाते हैं। इन दृष्टियों से वह हमारी परिचित भाषाओं से बहुत भिन्न है।

संस्कृत भाषा पर्यायवाची शब्दों में खास तौर से समृद्ध है। इस भाषा में इतने पर्याय कहाँ से आये, यह शोध का रोचक विषय हो सकता है। संस्कृत में पाये जानेवाले पर्याय आर्य जाति की निरीक्षण आदि अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। हमारा अनुमान है कि पर्यायवाची शब्दों का उपयोग उत्कर्ष-काल के आस-पास हुआ। रामायण महाभारत में सौन्दर्य-बोधक पर्यायों की उतनी प्रचुरता नहीं मिलती, यद्यपि वहाँ भी पर्याय शब्द प्रचलित पाये जाते हैं।

Correspondence

अर्चना कुमारी

शोध छात्रा, ललित नारायण
मिथिला, विश्वविद्यालय,
कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार,
भारत

संस्कृत के व्याकरण की भाँति उसका छन्द शास्त्र भी कठिन व कठोर नियमों के प्रतिपादन के लिए प्रसिद्ध हैं। छन्दशास्त्रियों की प्रसिद्ध उक्ति है :-

‘अपि माषं मषं कुर्यात् छन्दोभंगं न कारयेत्’

अर्थात् माष का मष भले ही कर दे, पर छन्दोभंग न करे। संस्कृत के अधिकांश छन्द ह्रस्व-दीर्घ वर्णों के निश्चित क्रम के अनुसार चलते हैं, इन क्रम में विपर्यय का प्रश्न ही नहीं उठता। फलतः छन्द की जरूरतें पूरी करने के लिए कवि को अक्सर न्यूनाधिक परिचित पर्यायों का आश्रय लेना पड़ जाता है।

पर्यायों के प्रयोग का दूसरा हेतु संस्कृत कवियों की संगीत-संवेदना एवं यमक, अनुप्रास आदि का प्रेम है। संस्कृत काव्य में विभिन्न धातुओं तथा शब्दों के असंख्य रूप एवं पर्याय निरन्तर जीवित रहते हुए दिखाई पड़ते हैं। कोषकार ही नहीं, कवि और उनके टीकाकार भी संस्कृत की विस्तृत शब्द राशि से जीवन्त परिचय रखते हैं। उत्कर्षकाल के कवियों में कालिदास सबसे सरल तथा सरस हैं, किन्तु उनकी कृतियों में भी भाँति-भाँति के पर्यायों का प्रचुर समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ रघुवंश का एक श्लोक द्रष्टव्य है।

ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला
विभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम्। १

कोपलों के समान लालिम रंगवाली नन्दिनी गौ के माथे में कुछ टेढ़ा सफेद रोओं का अंक था, उसे वह वैसे ही धारण कर रही थी जैसे नये चन्द्र की सन्ध्या। यहाँ वक्र या टेढ़े के लिए "आभुग्न" शब्द का प्रयोग किया है जो अपेक्षाकृत कम प्रयुक्त पर्याय है।

कविता की भाषा का एक प्रधानलक्ष्य चमत्कार की सृष्टि है। चमत्कार का एक उपकरण नये शब्दों मुहावरों आदि का प्रयोग भी है। सुन्दर पर्यायों के समावेश से संस्कृत छन्दों में सन्निवेशित साधारण बात भी चमत्कारपूर्ण दिखाई देने लगती है। 'शिशुपालवध' के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में महाकवि माघ ने 'ज्योति' तथा 'प्रकाश' या 'प्रकाशन' चमक या चमकने आदि अर्थों का द्योतन करने के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग करके नारद के वर्णन से सम्बन्धित पद्यों को बड़ा आकर्षक बना दिया है -

‘पतत्यथो धाम विसारि सर्वतः
किमेतदिव्याकुलमीक्षितं जनैः।’ २
‘दधानमम्भोरुह-केसरद्युतीर्जटाः
शरच्चन्द्रमरीचिरोचिषम्।’ ३
‘महामहानीलशिलारूचः पुरो
निषेदिवान् कंसकृषः स विष्टरे।’ ४

संस्कृत के कवि पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से जिन प्रभावों को उत्पन्न कर देते हैं उनकी सृष्टि के लिए दूसरी भाषाओं में अनेक वर्णनात्मक पदोच्चयों तथा उपमा आदि अलंकारों का प्रयोग अपेक्षित होगा। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में सूर्य के लिए एक ही शब्द प्रचलित है अर्थात् सन; नदच्छ वहाँ दिनमणि से संकेतित होनेवाले चित्र को खड़ा करने के लिए वर्णनात्मक पंक्ति या पदोच्चय का सन्निवेश करना पड़ेगा। 'माघ' के काव्य में अपरिचित या अल्प परिचित पर्यायों का प्रयोग कालिदास से कहीं अधिक मात्रा में पाया जाता है। 'अग्नि' के लिए 'तनूनपात' सूर्य के लिए 'अनुरूसारथि' यमराज के लिए

'कीनाश' क्षुद्र के लिए 'क्षोदीयान्' जैसे शब्दों का प्रयोग 'शिशुपालवध' में हुआ है।

संस्कृत भाषा में कुछ शब्द ऐसे हैं जो नियमित रूप में किसी धातु से प्राप्त नहीं होते। ऐसे शब्द व्याकरण में विशेष नियमों से सिद्ध होते हैं और अपेक्षाकृत कम परिचित रहते हैं। संस्कृत के कवि इस कोटि के शब्दों का प्रयोग करने से भी नहीं चूकते। कालिदासकृत रघुवंश में ऐसे ही कुछ पदों या शब्दों का प्रयोग किया गया है :-

‘प्रत्याश्वमेधावभृथार्द्रमूर्तेः सौस्नातिको यस्य
भवत्यगस्त्यः।’ ५
‘भृम्वादीननुगृहणन्तं सौखशायनिकानुषीन्।’ ६
‘इति रामो वृषस्यन्तीं वृषस्कन्धः शशास ताम्।’ ७

यहाँ 'सौस्नातिक' का अर्थ आपने सुख से स्नान कर लिया एवं 'सौखशायनिक' का अर्थ सुख से सोये एवं 'वृषस्यन्ती' का अर्थ है कामुकी या कामपीडिता। उत्कर्षकाल के काव्य में ऐसे शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं जिनके अर्थ का परिज्ञान विशेष जानकारी की अपेक्षा रखता है। विशिष्ट संदर्भ में ऐसे शब्दों का प्रयोग संक्षेप के साथ अर्थ गौरव उत्पन्न करने में सहायक होता है। रघु की प्रशंसा में कालिदास ने कहा-

‘स हि सर्वस्य लोकस्य युक्तदण्डतया मनः। ८

अर्थात् रघु यथापराध दण्ड देता था जिससे प्रजा उससे प्रसन्न रहती थी। यहाँ "युक्तदण्डता" व्यंजना एक प्रकार का मुहावरा है जो राजनीति तथा शासन के विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्ध रखता है।

किसी भाषा की शक्ति व समृद्धि का समुचित परिचय केवल उसके शब्दकोश की जानकारी से नहीं हो सकता। संस्कृत का अधिक महत्व इस ऐतिहासिक परिस्थिति में है कि उसका कलेवर तरह-तरह ज्ञान-विज्ञानों के विकास से पल्लवित व पुष्ट हुआ। व्याकरण, निरुक्त, गणित, ज्योतिष, पिंगल, राजनीति, दर्शन यहाँ तक कि कामशास्त्र जैसे विशयों का भी संस्कृत भाषा के माध्यम से अधिक विकास हुआ। एक ओर जहाँ संस्कृत की श्लोक में एन्द्रिय चित्र भरी पड़ी है वहाँ दूसरी ओर उसके दर्शन ने प्रकृति, परमाणु, पुरुष, ब्रह्म, अध्यास जैसे सूक्ष्म प्रत्ययों को उत्पन्न किया है। उसके माध्यम में एक ओर जहाँ 'कणिष्क' तथा 'कौटिल्य' जैसे यथार्थदर्शी नीति विशारदों के मन्तव्य प्रतिपादित हुए वहाँ दूसरी ओर भगवद्गीता तथा योगविशिष्ट जैसे धार्मिक ग्रन्थ भी प्रस्तुत किये गये जिनमें निष्काम कर्मशीलता तथा त्याग की ऊँची से ऊँची शिक्षाएँ मौजूद हैं। संस्कृत वाङ्मय कितना लम्बा चौड़ा है और उसमें उच्चकोटि के ग्रन्थों की कितनी बड़ी संख्या है इसका बोध इस तथ्य से हो सकता है कि संस्कृत भाषा का साहित्य विस्तार एवं मात्रा में यूनानी तथा लैटीन दोनों भाषाओं के सम्मिलित साहित्य से अधिक है। जहाँ तक हमारे देश का प्रश्न है यहाँ किसी दूसरी भाषा में इतना ऊँचा तथा विस्तृत साहित्य नहीं बना जैसा कि संस्कृत में। इन्हीं कारणों से यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति के उच्चतम रूपों को समझने के लिए संस्कृत भाषा का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। संस्कृत के प्रायः सभी देशी-विदेशी विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि यह भाषा बड़ी संगीतमय है। उसके मुख्य कारण दो हैं। एक संस्कृत कवियों की विकसित शब्दमैत्री की संवेदना और दूसरी सघन शब्दार्थ योजना जिससे थोड़े शब्दों में बहुत सा अर्थ भर दिया जाता है। वस्तुतः काव्य के कलेवर में शब्द संगीत तथा अर्थ संगीत को विच्छिन्न नहीं किया जा सकता। एक ही छन्द में प्रस्तुत किये गये दो पद्यों में बड़ा गुणात्मक

भेद हो सकता है। कालिदास ने अपने मेघदूत में मन्दाक्रान्ता छन्द का जैसा संगीतात्मक प्रयोग किया है वैसा कोई दूसरा कवि नहीं कर सका। इस छन्द में कवि को विवश होकर समास बहुल शैली का आश्रय लेना पड़ा है फिर भी उसमें प्रसाद गुण का पर्याप्त सन्निवेश हो सका है। कालिदास के हाथों में अनुष्टुप छन्द भी विशेष संगीतपूर्ण बन गया है। जहाँ तक शब्द मैत्री का प्रश्न है, संस्कृत काव्य विश्व-साहित्य में वेजोड़ है, श्रेष्ठ कवियों की प्रायः प्रत्येक पंक्ति में किसी न किसी अनुप्रास का पुट रहता है। कालिदास ने क्लिष्ट यमकों की योजना ही की है। उनके यमक व अनुप्रास दोनों आयासहीन जान पड़ते हैं।

संस्कृत छन्दों की सांगीतिक दृढ़ता को एक दूसरे स्रोत से भी पुष्टि मिलती है- संस्कृत शैली की सन्धि-रचना एवं समास विधान से। ये चीजें अर्थ व संगीत दोनों में सघनता का पुट ला देती हैं। समासों के प्रयोग द्वारा संस्कृत कवि थोड़े स्थान में बहुत सी बात कह देता है और सन्धियाँ उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों में अभिन्नता की स्थापना कर देती हैं। कदाचित विचारों का प्रकाशन जितना संक्षेप में संस्कृत भाषा में की जाती है वैसा कम भाषाओं में सम्भव है। यों सभी भाषाओं के अच्छे लेखक अपने वक्तव्य को संक्षेप में प्रकट करने के अभ्यस्त होते हैं।

यह प्राचीनतमा संस्कृत भाषा विभिन्न स्थलों, रूपों एवं क्षेत्रों आदि में महत्वशालिनी रही। इसमें पर्यायों की प्रचुरता, संगीतमयता, सन्धि रचना और समास- विधान, अन्यान्य विधानों की प्रस्तुतीकरण लोकहितार्थ, लोकपरमार्थ सांगोपाङ्ग दृष्टि से हुआ है। इसके सम्बन्ध में बहुत कुछ कहने के बाद भी थोड़ा कहना आभास होता है।

स्रोत एवं संदर्भ:-

1. रघुवंशम् - १९८३
2. शिशुपालवधम् - १९२
3. शिशुपालवधम् - १९५
4. शिशुपालवधम् - १९१६
5. रघुवंशम् - ६६६१
6. रघुवंशम् - १०६१४
7. रघुवंशम् - १२६३४
8. रघुवंशम् - ४६८